प्रश्न—Establish सत्कार्यवाद of सांख्य and distinguish it from other types of कार्यवाद.

उत्तर—तत्त्वचिन्तन की नीव है कार्यकारणभाव की विचारणा। जहाँ कार्य कारण भाव की विचारणा पैदा ही नहीं होती वहाँ कभी तत्त्वमीमांसा के उदय का सम्भव ही नहीं है। कार्यकारणभाव की विचारणा देश एवं काल की मर्यादा में ही हो सकती है। उसमें गहराई और सुनिश्चितता भी अधिकाधिक आती जायेगी। ऐसे विस्तार, विकास एवं संशोधन के कारण ही तत्त्वचिन्तन में नये २ चिन्त्यविषय दाखिल होते रहते हैं। उसके स्वरूपचिन्तन में भी परिवर्तन होता है। कार्य किसे कहते हैं? कारण क्या है? इसका विशद विवेचन वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, आगम एवं पिटक आदि ग्रन्थों में काफी स्पष्टरूप से दिया गया है।

जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दर्शन के भिन्न २ सम्प्रदाय के भिन्न २ मत हैं।

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण ने—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥

इस कारिका के द्वारा सांख्यसम्मत सत्कार्यवाद की प्रतिष्ठापना की है।

(१) बौद्धदर्शन का कहना है कि असत् अर्थात् विनष्ट उपादान से सत्-भाव कार्य की उत्पत्ति होती है—

"सर्वे कार्यरूपाभावा, अभावकारणकाः कार्यत्वात्, बीजनाशोत्पन्नाङ्कुरादिवत्।"

Scanned with CamScanner

(२) वेदान्त का भी विचार है कि एक अद्वितीय त्रैकालिक बाधरहित नित्य-ब्रह्म का अतात्त्विक अन्यथाभाव यह संसार है। "नेह नानास्ति किञ्चन"। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"।

(३) न्याय वैशेषिक का कहना है कि सत् अर्थात् नित्य परमाणु से असत् अर्थात् अनित्य द्वयणुकादि की उत्पत्ति होती है।

(४) इसी प्रकार सत् शब्दब्रह्म से असत् जगत् उत्पन्न होता है। यह वैयाकरण कहते हैं—

"अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः" वा. प. ॥

अन्य मतोंका खण्डन करने के लिये उक्त कारिका कही गई है। वाचस्पति का कहना है कि यह ठीक है कि बीज एवं मृत्पिण्ड के नष्ट होने पर अङ्कुर एवं घटादि उत्पन्न होते हैं तथापि उनका प्रध्वंसाभाव अङ्कुरादि का कारण नहीं है, बल्कि उस उपादान कारण की भावात्मकता कारण है। यदि प्रध्वंस ही कारण हो तो तन्तु से जो कि ध्वस्त नहीं होता पट कभी बनेगा ही नहीं। दूसरी बात यह है कि अभाव तो सर्वत्र सुलभ है फिर सर्वदा सर्वत्र सभी कार्यों की उत्पत्ति होनी चाहिये पर ऐसा कहाँ होता है?

और वेदान्त का यह कहना भी ठीक नहीं है कि सत् ब्रह्म से मिथ्या संसार की उत्पत्ति होती है। यदि यह प्रपञ्चप्रत्यय मिथ्या होता तो इसका कभी न कभी बाध होता। पर ऐसा होता नहीं। इसलिये यह संसार मिथ्या अर्थात् स्वाधिकरणनिष्ठात्यन्ता-भाव का प्रतियोगी नहीं हैं।

न्यायवैशेषिक का कहना है कि कार्य अपने कारणव्यापार के पूर्व वर्त्तमान नहीं रहता। कारणव्यापार के बाद उत्पन्न होने वाली यह एक नवीन वस्तु है। इसके उत्तर में सांख्य का अनुमान है—

१. असदकरणात्—"कार्यं कारणव्यापारात् प्रागपि सत् क्रियामाणत्वात्"। असद-करणात् इसमें व्यतिरेकव्याप्ति अन्तर्भूत है—

यत् असत्=न शृंगतुल्यम् प्रागविद्यमानम् तत् अकरणम्=अनुत्पन्नम्। इसका अन्वय इस प्रकार है—"यच्च करणम्=क्रियमाणं तत् सत् यथा घटः। वस्तुतः जो चीज कारण व्यापार के पूर्व नहीं है उसको कभी भी उत्पन्न नहीं किया जा सकता। पीतत्वाभावयुक्त नील को कभी भी पीत नहीं बनाया जा सकता।

यदि यह कहा जाय कि कार्य के असत्त्व का अर्थ नृशृङ्गवत् नहीं है बल्कि जैसे घट में पाक के पहले श्यामता (रक्तत्वाभाव) एवं पाक के बाद रक्तत्व की सत्ता होती है। उसी प्रकार असत्व एवं सत्त्व घट के धर्म हैं। अन्तर इतना ही है कि पहला घट भी उत्पत्ति के पहले और दूसरा बाद में रहता है? तो यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि सत्त्व या असत्त्वरूप धर्म बिना धर्मी के विद्यमान रहे तो किस अधिकरण में रहेंगे। जिस समय हम कहेंगे असन् घटः, उस समय धर्म और धर्मी में (सांख्यमत में) तादात्म्य होने से यदि धर्म (असत्व) वर्तमान है तो उसका धर्मी घट अवश्य ही वर्तमान रहेगा। इसलिये जैसे पीड़न से तिल में तैल व्यक्त होता है। अवघात से धान्य में तण्डुल व्यक्त होते हैं उसी प्रकार कारणव्यापार के द्वारा उपादान में पहले से विद्यमान कार्य की अभिव्यक्ति होती है।

२. उपादानग्रहणात्—दूसरी बात यह है कि किसी भी कार्य को प्राप्त करने के लिये हम उसका उपादानकारण खोजते हैं। यदि उस उपादान में कार्य अनागतावस्थ होकर

न रहे तो फिर वह उपादान और दूसरी वस्तु ये दोनों समान हैं। फिर तेल को प्राप्त करने के लिये जैसे तिल का ग्रहण होता है वैसे सिकता का भी ग्रहण होना चाहिये। पर ऐसा होता नहीं। क्यों? इसीलिये कि तिल में तेल अनागतावस्थ है और सिकता में उसका अत्यन्ताभाव है। अतः कार्य से कारण सम्बद्ध होकर ही कार्य का अभिव्यञ्जक होता है।

प्रश्न है कि हम कारण से असम्बद्ध ही कार्य की उत्पत्ति मानें तो क्या हर्ज है? उत्तर में कहते हैं—

३. सर्वसम्भवाभावात्—यदि तिल को तेल से असम्बद्ध माना जाय तो जैसे वह तेल से असम्बद्ध है उसी प्रकार पट से भी असम्बद्ध है। फिर जैसे तिल से तेल उत्पन्न होता है वैसे पट भी उत्पन्न होना चाहिये। अर्थात् सबका सभी से सम्भव होना चाहिये। पर ऐसा असम्भव है। अतः—

"कार्यं कारणेन सम्बद्धम्, कारणे नियमेनाभिव्यज्यमानत्वात्"।

यही बात निम्न कारिका में भी कही गई है—

असत्वे नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः॥

अर्थात् कारण से असम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति मानने पर तन्तु से ही पट उत्पन्न होता है। कपाल से नहीं। क्यों? इसका कोई उत्तर (व्यवस्था) नहीं रह जायगा।

प्रश्न है कि असम्बद्ध भी सत्कारण उसी कार्य को उत्पन्न करेगा जिसमें जो कारण शक्त रहेगा। जैसे पट-शक्ति से युक्त तन्तु पट को उत्पन्न करते हैं। और कारण की यह शक्ति कार्य को देखने से अनुमित हो जाती है—

"कपालं घटोत्पादनशक्तिमत् घटजनकत्वात्।

इसप्रकार अव्यवस्था नहीं रहेगी। अतः कार्य को असत् मानिये? उत्तर में कहते हैं—

४. शक्तस्यशक्यकरणात्—जिस कार्य में जो कारण शक्त है उस शक्त कारण का वही कार्य होगा। यदि कार्य असत् हो तो शक्ति का भी अभाव माना जायेगा। अतः—

"कारणगता शक्तिः अनागतावस्थकार्यसम्बद्धा, विद्यमानसत्पदार्थविषयकत्वात्, ज्ञानवत्।

इस अनुमान से कार्य सत् सिद्ध होता है। विकल्प से भी यही बात सिद्ध होती है—शक्त कारण में रहने वाली वह शक्ति सभी कार्यों में है या केवल शक्य कार्य में? यदि सभी कार्यों में है तब तो वही पहले की अव्यवस्था होगी। और यदि शक्यमात्र में है तो धर्मी के अविद्यमान रहने पर कैसे उसमें रहेगा? अर्थात् शक्ति में असत् कार्य-निरूपितत्व कैसे रहेगा?

यदि नैयायिक कहे कि शक्ति में ऐसा वैशिष्ट्य है कि वह कार्यानिरूपित भी किञ्चित् कार्य को उत्पन्न कर सकता है तब सांख्यवाले प्रश्न करते हैं कि वह शक्तिविशेष कार्य से सम्बद्ध है या असम्बद्ध? यदि सम्बद्ध है तो सम्बन्ध द्विष्ठ होता है। अतः आपको शक्ति और कार्य दोनों मानना पड़ेगा। और यदि असम्बद्ध है तो फिर सर्वसम्भव की अव्यवस्था आवेगी।

५. कारणभावाच्च—इसके अतिरिक्त हमारे मत में कार्य, कारण से भिन्न नहीं होता। फिर यदि कारण सत् है तो कार्य भी सत् मानिये। कार्य और (उपादान) कारण के अभेद में साधक निम्न अवीतानुमान है—

Scanned with CamScanner

(क) पटः तन्तुभ्यो न भिद्यते तद्धर्मत्वात्। व्यतिरेक व्याप्ति है—
यद् यतो भिद्यते तत्तस्य धर्मो न भवति। यथा गौः अश्वस्य।
उपनय—धर्मश्चपटस्तन्तूनाम्। निगमन—तस्मान्नार्थान्तरम्।

(ख) पटस्तन्तुभ्यो न भिद्यते, उपादानोपादेयभावात्। यद्यस्मात् भिद्यते तयोर्न उपादानोपादेयभावः। यथा घटपटयोः।
उपादानोपादेयभावश्चतन्तुपटयोः तस्मात् न तन्तुपटयोर्भेदः।

(ग) १+२. तन्तुपटौ परस्परभेदाननुयोगिनौ संयोगाप्राप्त्यभावात्। यौ परस्पर-भेदानुयोगिनौ तौ संयोगाप्राप्तिमन्तौ यथा कुण्डबदरौ, हिमवद्विध्याचलौ। तन्तुपटौ न संयोगाप्राप्तिमन्तौ। तस्मात् तौ परस्परभेदाननुयोगिनौ।

(घ) पटस्तन्तुभ्यो न भिद्यते गुरुत्वान्तरकार्याग्रहणात् यद्यस्माद्भिन्नम् तस्य गुरुत्वा-न्तरकार्यं गृह्यते, यथा एकपलिकस्य स्वस्तिकस्यगुरुत्वकार्योऽवनतिविशेषात् द्विपलि-कस्य स्वस्तिकस्य गुरुत्वकार्यावनतिविशेषोऽधिकः।
न च तन्तुगुरुत्वकार्यात् पटस्य गुरुत्वकार्याऽधिक्यं दृश्यते।
तस्मान्न तन्तुभ्यः पटः भिद्यते।

इस प्रकार पाँच अभेदसाधक अवीत अनुमान से उपादानकारण एवं कार्य में अभेद सिद्ध होता है। फिर कारण सत् है तो कार्य भी सत् ही होगा। तन्तु का ही धर्मलक्षण एवं अवस्था परिणाम पट है।

यदि कोई कहे कि कारण एवं कार्य में क्रिया, निरोध, बुद्धि, व्यपदेश, अर्थक्रिया, एवं अर्थक्रियाव्यवस्थाभेद है। जैसे—

क्रियाभेद—पटः उत्पद्यते जब कहते हैं तो उस समय तन्तुः उत्पद्यते यह भी कह सकते है।

निरोधभेद—पटः नश्यति, तन्तुर्नश्यति।

बुद्धिभेद—अयं पटः, इमे तन्तवः।

व्यपदेशभेद—पटः, तन्तवः।

अर्थक्रिया—पट से प्रावरण, तन्तु से सीवन।

व्यवस्थाभेद—पट से ही प्रावरण तन्तु से नहीं। तन्तु से ही सीवन पट से नहीं।

अतः इनके द्वारा कार्य एवं कारण में भेद सिद्ध होगा? तो उत्तर में सांख्य का कहना है कि ये हेतु ऐकान्तिक भेद को नहीं सिद्ध कर सकते। क्योंकि एक ही पदार्थ से तत्तत् विशेष धर्मों के आविर्भाव एवं तिरोभाव से आगन्तुक भेद प्रतीत होता है। जैसे कि कूर्म के अङ्ग जब निकलते हैं तो वे उसके शरीर से भिन्न मालूम पड़ते हैं और जब तिरोभूत हो जाते हैं तब अभिन्न। अतः कार्य सत् है। गीता में व्यास ने भी कहा है—
"नाऽसतोविद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः।

Scanned with CamScanner